उपाध्याय सकलचन्द्रगणि रचित

ध्यान-दीपिका (संस्कृत) संग्रह ग्रन्थ है

- म. विनयसागर

स्वास्थ्य की दृष्टि से एवं मन को साधित करने की दृष्टि से जीवन में योग का विशिष्ट प्रभाव है । योग की साधना से ही व्यक्ति योगी बनता है और त्रियोग को स्वाधीन कर केवलज्ञानी बनकर सिद्धावस्था को भी प्राप्त होता है । प्राचीन योग के सम्बन्ध में साधना की प्रणाली अवश्य रही होगी। आचारांगसूत्र में प्रयुक्त विपष्य शब्द को लेकर यह सिद्ध है कि उस समय भी ध्यान साधना की प्रणाली थी । जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण कृत ध्यानशतक प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है । आप्त आचार्य हरिभद्रसूरि ने आवश्यकसूत्र की बृहद्टीका में इस ग्रन्थ को पूर्ण रूप से उद्धृत किया है । आचार्य हरिभद्र के योग सम्बन्धी चार ग्रन्थ प्राप्त होते हैं और कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य का योगशास्त्र प्रसिद्ध ही है । न्यायाचार्य यशोविजयजी का भी योग सम्बन्धी विषयों पर अधिकार था ।

ध्यानदीपिका नामक ग्रन्थ के दो संस्करण प्राप्त होते हैं । एक संस्करण संस्कृत भाषा का जिसके प्रणेता उपाध्याय सकलचन्द्रगणि माने गए हैं । सकलचन्द्रगणि के इस ग्रन्थ का उल्लेख 'जिनरत्नकोष' और 'जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास' में भी किया गया है । जिनरत्नकोष के अनुसार सकलचन्द्रगणि कृत ध्यानदीपिका कि एक प्रति डेला उपाश्रय, अहमदाबाद में सुरक्षित है । सम्भवतः इस प्रति का या अन्य प्रति का उपयोग करके योगनिष्ठ आचार्य विजयकेसरसूरिजी महाराज ने विस्तृत विवेचन/टीका लिखी। इसका प्रकाशन मुक्ति चन्द्र श्रमण आराधना ट्रस्ट, पालीताणा से सन् २००१ में हुआ है । आचार्यश्री ने इसका अनुवाद गुजराती में किया था और हिन्दी अनुसार प्रो. बाबूलाल टी. परमार ने किया था । अनुवादक श्री विजयकेसरसूरिजी महाराज स्वयं ही योगनिष्ठ साधक थे, अपने अनुभव के साथ इस विस्तृत विवेचन को लिखा है, जो कि योगसाधकों के लिए अत्यन्त उपयोगी है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरा ग्रन्थ ध्यानदीपिका चतुष्पदी के नाम से राजस्थानी भाषा में है। इस चतुष्पदी के प्रणेता चौवीसी और अध्यात्मगीताकार उपाध्याय श्री देवचन्दजी हैं। जो कि युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि की परम्परा में राजसागर के शिष्य थे। इस चतुष्पदी की रचना विक्रम संवत् १७६६ मुलतान में की गई है। भणसाली गोत्रीय मिठुमल के आग्रह से यह रचना की गई है। यह रचना छः खण्डों में है और योगनिष्ठ स्वर्गीय आचार्य श्री बुद्धिसागरसूरि ने सम्पादन कर श्रीमद् देवचन्द्र भाग-१ में विक्रम संवत् १९७४ में प्रकाशित किया है।

जैसा कि उपाध्याय देवचन्दजी ने इस चतुष्पदी की प्रशस्ति के रूप में लिखा है कि मैंने शुभचन्द्राचार्य कृत ज्ञानार्णव ग्रन्थ जो संस्कृत भाषा में है उसका राजस्थानी भाषा में अनुवाद किया है, जिसमें अट्ठावन ढालें हैं -

पंडितजन मनसागर ठाणी, पूरणचंद्र समान जी।
सुभचंद्राचारिजनी वाणी, ज्ञानीजन मन भाणी जी॥ ध्यानक० २

भविक जीव हितकरणी धरणी, पूर्वाचारिज वरणी जी।
ग्रंथ ज्ञानार्णव मोहक तरणी, भवसमुद्र जलतरणी जी। ध्यानक० ३

संस्कृतवाणी पंडित जाणे, सरव जीव सुखदाणी जी।
ज्ञाताजनने हितकर जाणी, भाषारूप वखाणी जी। ध्यानक० ४

ढाल अठावन षड अधिकारु, शुद्धातमगुण धारु जी।
आखे अनुपम शिवसुखवारु, पंडितजन उरहारु जी॥ ध्यानक० ५

उपाध्याय देवचन्द्रजी तो ध्यानदीपिका ग्रन्थ का आधार शुभचन्द्राचार्य कृत ज्ञानार्णव को मानते हैं। जबकि सकलचन्द्रगणि ने इसका कोई उल्लेख नहीं किया है। अतः ज्ञानार्णव का और सकलचन्द्रगणि कृत ध्यानदीपिका का समीक्षण आवश्यक है।

शुभचन्द्राचार्य रचित ज्ञानार्णव ग्रन्थ, जैन संस्कृत संरक्षक संघ, सोलापूर से सन् १९७७ में सानुवाद प्रकाशित हुआ था। इसके अनुवादक पंडित बालचन्द्र शास्त्री थे। इसका रचना काल १२वीं शताब्दी क है। इसमें ३७ अधिकार हैं। श्लोक संख्या २२३० है। ज्ञानार्णव की एक टीका लब्धिविमलगणि कृत श्वेताम्बर प्रतीत् होती है। रचना समय १७२८ और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेखकाल १७३० है । इसकी प्रति दिगम्बर जैन मन्दिर गोधों का जयपुर, वेस्टन नं. १९४ है । यह लब्धिविमल श्वेताम्बर जैन यति ही प्रतीत होता है । (राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची चतुर्थ भाग पृ. १०८, नं. १३९३) सकलचन्द्रगणि कृत ध्यानदीपिका में कुल २०६ पद्य हैं । दोनों ग्रन्थों को देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि ज्ञानार्णव विषयानुसार ३९ विभाजन में प्राप्त होता है जबकि ध्यानदीपिका में विभाजन नहीं है किन्तु अनुकरण तो ज्ञानार्णव के अनुसार ही है । ऐसा प्रतीत होता है कि ज्ञानार्णव का यह संक्षिप्त संस्करण हो । ध्यानदीपिका में लगभग २५ पद्य तो वैसे के वैसे ही इसमें उद्धृत हैं । लगभग ३० पद्यों के प्रथम चरण या चरणों का साम्य है । तुलना की दृष्टि से देखिये :-

ध्यानदीपिका	ज्ञानार्णव
एकचिन्तानिरोधो यस्तद्ध्यानं भावनाः पराः ।	एकचिन्तानुरोधो यस्तद्ध्यानं भावनाः पराः ।
अनुप्रेक्षार्थचिन्ता वा ध्यानसन्तानमुच्यते ॥६६॥	अनुप्रेक्षार्थचिन्ता वा तज्ज्ञैरभ्युपगम्यते ॥११९५॥
वीतरागो भवेत् योगी यत्किञ्चिदपि चिन्तयन् ।	वीतरागो भवेद्योगी यत्किञ्चिदपि चिन्तयेत् ।
तदेव ध्यानमाम्नातमतोऽन्ये ग्रन्थविस्तराः ॥६८॥	तदेव ध्यानमाम्नातमतोऽन्ये ग्रन्थविस्तराः ॥२०२९॥
अनिष्टयोगजं चाद्यं परं चेष्टवियोगजम् ।	अनिष्टयोगजन्माद्यं तथेष्टार्थात्ययात्परम् ।
रोगार्त्तं च तृतीयं स्यात् निदानार्त्तं चतुर्थकम् ॥७०॥	रुक्प्रकोपात्तृतीयं स्यान्निदानात्तुर्यमङ्गिनाम् ॥१२०३॥
राज्यैश्वर्यकलत्रपुत्रविभवक्षेत्रस्वभोगात्यये ।	राज्यैश्वर्यकलत्रबान्धवसुहृत्सौभाग्यभोगात्यये,
चित्तप्रीतिकरप्रशस्तविषयप्रध्वंसभावेऽथवा ।	चित्तप्रीतिकरप्रसन्नविषयप्रध्वंसभावेऽथवा ।
सन्त्रासभ्रमशोकमोहविवशैर्यं चिन्त्यतेऽहर्निशम् ।	सन्त्रासभ्रमशोकमोहविवशैर्यत्खिद्यतेऽहर्निशं,
तत्स्यादिष्टवियोगजं तनुमतां ध्यानं मनोदुःखदम् ॥७३॥	तत्स्यादिष्टवियोगजं तनुमतां ध्यानं कलङ्कास्पदम् ॥१२०८॥
दृष्टश्रुतानुभूतैस्तैः पदार्थैश्चित्तरञ्जकैः ।	दृष्टश्रुतानुभूतैस्तैः पदार्थैश्चित्तरञ्जकैः ।
वियोगे यन्मनःक्लेशः स्यादार्त्तं चेष्टहानिजम् ॥७४॥	वियोगे यन्मनः खिन्नं स्यादार्तं तद्द्वितीयकम् ॥१२०९॥

ध्यान दीपिका के पद्याङ्क कोष्ठक रहित हैं और ज्ञानार्णव के पद्याङ्क कोष्ठक सहित हैं ।

७५ (१२१०); ७८ (१२१४); ८२ (१२२५); ८७ (१२३९); ८८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१२३८); ९० (१२४९); ९६ (१२६४); ११७ (१३२४); १२० (१६२१); १२३ (१६४०); १४२ (१८८६); १४३ (१८८७); १४४ (१८८८); १४५(१८८९); १४६ (१८९०); १४८ (१८९२); १५४ (१९२०); १६८ (२०७६); १७३ (१५०५); १७४ (१५०६); १७५ (१५०७); १७८ (१५७५); १९२ (२१२५); १९७ (२१४८); १९८ (२१४९); १८१ (२११४); १९९ (२१५२)

प्रारम्भिक चरणों की तुलना कीजिए :-

१२ (१२८३); २१ (११७); ३२ (१८०); ३७ (१९४); ४३ (११७); ४७ (२७०); ५५ (२८८); ६१ (११६८); ७२ (१२०६); ९२ (१२५१); ९६ (१२६४); १०० (१४६२); ११२ (१२८३); १२९ (१६९०); १३० (१२६९); १३७ (१८७७); १३८ (१८७८); १३९ (१८८०); १४७ (१८९१); १६२ (१९९२); १७० (१९४१); १७८ (१५७४); १८१ (२११४); २०० (२१५२)

इस तुलनात्मक अध्ययन से प्रतीत होता है कि ज्ञानार्णव का आधार लेकर सकलचन्द्रगणि ने संग्रह ग्रन्थ के रूप में इस ध्यान दीपिका का निर्माण किया है । कुछ श्लोक पूर्ण रूप से कुछ एक चरण के रूप में उद्धृत करके शेष श्लोकों की रचना स्वयं ने की हो । अतः यह कहा जा सकता है कि यह मौलिक ग्रन्थ न होकर ज्ञानार्णव का आभारी है ।

सम्भव है श्री हेमचन्द्राचार्य कृत योगशास्त्र के साथ तुलना करने पर अनेक पद्य यथावत् प्राप्त हो सकते हैं ।

अनुवादक श्री विजयकेसरसूरिजी महाराज ने ध्यान दीपिका के श्लोक संख्या २०६ में निम्न पद्य उद्धृत किया है जो कि ज्ञानार्णव में नहीं है :-

"चन्द्रार्कदीपालिमणिप्रभाभिः किं यस्य चित्तेऽस्ति तमोऽस्तबोधम् ।
तदन्तकर्त्रीं क्रियतां स्वचित्ते ज्ञान्यंगिनः ध्यानसुदीपिकेयम् ॥२०६॥"

इस श्लोक के अनुवाद में कर्त्ता के सम्बन्ध में आचार्यश्री लिखते हैं :-

"इस श्लोक के प्रारम्भ में आये हुए चन्द्र शब्द से इस ग्रन्थ के कर्त्ता सकलचन्द्र उपाध्याय का नाम भी प्रकट होता है, क्योंकि पूर्णिमा का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्र सकल-अक्षय-अखंड-पूर्ण होता है और उस पर से कर्त्ता सकलचन्द्र ने अपना गुप्त नाम इसमें छिपाया है । और अर्क, दीपालि और मणि के संख्या वाचक अंकों की गिनती पर से यह ग्रन्थ संवत् १६२१ में रचा गया हो यह भी सूचित होता है ।'' (पृष्ठ संख्या २३६)

इस श्लोक से जो सकलचन्द्र ग्रहण किया गया है वह द्राविडी प्राणायाम जैसा प्रतीत होता है । स्पष्टतः सकलचन्द्र का उल्लेख हो ऐसा प्रतीत नहीं होता है । उसी प्रकार अर्क, दीपाली और मणि से निर्माण संवत् का ग्रहण किस आधार से किया है प्रतीत नहीं होता । मेरी दृष्टि में इन शब्दों से १६२१ निकालना दुष्कर कार्य है ।

यह सम्भव है कि ग्रन्थ की प्रान्त पुष्पिका में ''श्री सकलचन्द्रगणि कृता ध्यानदीपिका'' लिखा हो और उसी के आधार पर अनुवादक आचार्यश्री ने इस ग्रन्थ को श्री सकलचन्द्रगणि कृत मानकर ही उल्लेख किया हो ।

यह निर्णय करना विज्ञों का कार्य है कि यह ध्यान दीपिका ज्ञानार्णव के आधार से बना हुआ संग्रह ग्रन्थ है या मौलिक ग्रन्थ है ?

श्री सकलचन्द्रोपाध्याय श्री विजयहीरसूरिजी के राज्य में विद्यमान थे। अच्छे विद्वान् थे । सतरह भेदी पूजा आदि इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं । श्री देसाई ने कुछ रचनाओं को १६४४ के पूर्व और कुछ रचनाओं को १६६० के पूर्व माना है । अतः इनका समय १७वीं शताब्दी है ।

C/o. प्राकृत भारती
जयपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org